



सम्पादकीय

त्याग और त्याग-वृत्ति



हम सभी ने सुना है कि त्याग से भाग्य बनता है और यह भी सुना है कि श्रेष्ठ कर्मों से भाग्य बनता है। उपरोक्त का अर्थ यही है कि हम कर्म तो बहुत करते हैं परन्तु भाग्य, केवल विशेष कर्मों से ही बनता है और विशेष कर्म वही हैं जिनमें त्याग की भावना समाहित होती है।

त्याग और त्याग-वृत्ति में भी अन्तर है। कई परिस्थितियों में, किसी विशेष प्रेरणा के वश, अच्छे संग के प्रभाव से, मजबूरी से हम कई बातों का त्याग कर देते हैं परन्तु उस प्रभाव, परिस्थिति, मजबूरी आदि के पूरा होते ही हम पुनः पुराने ढर्रे पर लौट आते हैं। इसका अर्थ यह है कि हमने अल्पकाल के लिए त्याग किया पर त्याग-वृत्ति नहीं बनाई। वृत्ति का अर्थ है संस्कार। वृत्ति निर्मित होने पर, परिस्थिति अनुकूल हो या प्रतिकूल, त्याग चलता ही रहता है। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति बड़ों के अंकुश में रहता है। सादा पहनता, खाता है। लोग भी उसे

सादगीपसंद कहते हैं परन्तु बड़ों का अंकुश हटते ही यदि वह लोभ और भोग के वश हो जाता है तो इसे मजबूरीवश अपनाई गई सादगी कहेंगे। कई लोग, आर्थिक रूप में संघर्षरत होते हैं, जीवनयापन की सभी कठिनाइयों को सहजता से पार कर लेते हैं परन्तु इस संघर्ष के पूरा होते ही, सुख-सुविधाओं का अम्बार लगा लेते हैं। किसी सुविधा की कमी में खलल पड़ जाये तो सहन नहीं कर पाते हैं, इसे परिस्थिति-वश किया गया त्याग कहेंगे।

कई लोग किसी महान आत्मा के संग में रहे हुए होते हैं। उसके उपदेशों, आदर्शों की उन पर छाप होती है। परन्तु उस संग के छूटते ही उनका आदर्श का लबादा भी उतर जाता है और वे पुनः पुराने संस्कारों की पटरी पर अग्रसर हो जाते हैं, इसे प्रभाव-वश किया गया त्याग कहेंगे। त्याग-वृत्ति बहुत ऊँची भावना है। ऐसा व्यक्ति त्याग का दिखावा नहीं करता, त्याग को जीता है। त्याग से प्राप्त भाग्य के

भण्डार को निहारते हुए वह हर प्रकार के त्याग के लिए सदा तत्पर रहता है। वह अकर्तव्य का त्याग करता है और कर्तव्य करने पर होने वाले फल का भी त्याग कर देता है। उसका त्याग किसी व्यक्ति विशेष के लिए, स्थान विशेष के लिए या उद्देश्य विशेष के लिए नहीं होता वरन् यह वृत्ति उसमें, वायु में घुली हुई ऑक्सीजन की तरह होती है। उसमें दूसरों को सुख देने की, दातापन की, स्वार्थ के त्याग की, अपना तन-मन-धन लगाकर भी दूसरे का जीवन बनाने की, दूसरों के प्रति शुभभावना, शुभकामना की स्वाभाविक वृत्ति होती है।

कहा जाता है, कर्म करो, पुरुषार्थ करो परन्तु प्रश्न यह है कि कैसा कर्म करो, कैसा पुरुषार्थ करो। मैंने इतने कर्म किये हैं, मुझे कोई अवॉर्ड नहीं देता, पदवी नहीं देता, प्रशंसा नहीं करता मेरी। कैसे पत्थर दिल लोग हैं, मुझे जानते नहीं, पहचानते नहीं, आगे बढ़ाते नहीं, साधन-सुविधाएँ देते नहीं। ऐसा सोचना त्याग भावना को नष्ट करना

है। ऐसी सोच से उत्पन्न कर्मों का श्रेष्ठ फल नहीं होता।

त्याग भावना से किये गये कर्म का फल कई गुणा बढ़ जाता है परन्तु सच्चा त्यागी फल बढ़ने की इस भावना से भी उपराम रहता है। दूसरे वंश सुख को देखकर (आन्तरिक सुख को) सुख महसूस करना एक उत्तम वृत्ति है परन्तु दूसरे के सुखों से ईर्ष्या करना यह अधम वृत्ति, स्वार्थी वृत्ति, ईर्ष्या वृत्ति और भोग वृत्ति है।

राजयोग हमें हठयोगी बनना नहीं सिखाता। ऐसा नहीं करना कि भोजन होते भी भूखे रहें, बिस्तर होते भी खुरदुरी ज़मीन पर सोएँ, छाता होते भी धूप-बरसात में छलनी होते रहें। परन्तु ऐसा भी नहीं करना कि संसार में बढ़ती हुई नित नई सुविधाओं को देखकर हम अपना चैन और सन्तुलन खो बैठें। आज एक कार खरीदी, कल नया मॉडल आते ही उसके पीछे मन चलायमान हो गया, आज एक मकान बनाया, कल नये डिज़ाइन का दूसरा मकान देख, अपने वाले से असन्तुष्ट हो गए। आज एक जोड़ा कपड़ा-जूता खरीदा और कल दूसरों के कपड़े-जूते से तुलना कर मन धोखे में आ गया। इस प्रकार की चलायमान और असन्तुष्ट वृत्ति से ही भोगी

जीवन की शुरूआत होती है।

योगी जीवन में एक बहुत बड़ी परीक्षा आती है, कृपया ध्यान दें, यह परीक्षा दिखने में मीठी, स्वाभाविक और लाभदायक लगती है पर है बड़ी खतरनाक। पुनः नम्र निवेदन है कि इस ओर ध्यान दें। परीक्षा यह है कि चलते-चलते हम दूसरों की नक़ल करने लग जाते हैं कि यह रहता कैसे है, जाता कैसे है, मिलता किनसे है, अपने पास क्या-क्या रखता है, इसको साधन, वैभव, कौन-से मिले हैं आदि-आदि। यहीं से त्याग समाप्त, योग समाप्त और यहीं कमाया, यहीं खाया वाली कहावत लागू हो जाती है। व्यक्ति खाली हाथों ही लौटने को मजबूर हो जाता है।

कई भाई-बहनें ईश्वरीय मार्ग पर चलते-चलते कई बार शिकायत करते हैं कि हमारा योग नहीं लगता, हमारी योग की स्टेज ऊँची नहीं उठती, अनुभूति नहीं होती। इसका कारण भी यही है कि मन कहीं दलदल में फँसा है। जैसे दलदल में फँसा पाँव ऊपर नहीं उठता, ऐसे दलदल में फँसी बुद्धि भी ऊपर नहीं उठती। दलदल कौन-सी? आँखों का रस, कानों का रस, विकारी सम्बन्धों का रस, विनाशी वस्तुओं और वैभवों का रस, स्थूल प्राप्तियों का रस, कलियुगी नरकमय संसार

के दृश्यों का रस – इन झूठे रसों में फँसी बुद्धि परमधाम या उसमें निवास करने वाले ज्योतिर्बिन्दु को नहीं देख पाती। जब बुद्धि दिव्य नहीं, उड़ने के पंख उसके पास नहीं तो योग लगेगा कैसे? इसलिए बार-बार अपने को चेक कीजिए, देखिए, परखिए, आत्म-अन्वेषण कीजिए कि कहीं आप उन सुखों में तो नहीं खो गये जो आपको प्राप्त हो रहे हैं? आपको वरिष्ठ, अनुभवी और सेवाधारी मानकर लोग आपको जो मान-सुविधा दे रहे हैं, कहीं आपने उसी को तो मंज़िल नहीं मान लिया। झिंझोड़िए अपने को, यह मंज़िल नहीं, रास्ते का एक पड़ाव मात्र है, अभी तो कर्त्तव्य पथ, त्याग पथ मीलों लम्बा है। इस त्याग पथ पर आपको लोगों की मान-बढ़ाई नहीं स्वीकार करनी, आपका असली सम्बल भगवान द्वारा प्राप्त दिव्य अनुभूतियाँ हैं।

यदि ईश्वरीय प्यार और अनुभूतियाँ जीवन में नहीं तो हमारे अच्छे कर्म कोरी समाजसेवा और हम कोरे समाजसेवक बनकर रह जाते हैं और परमात्मा के सान्निध्य से प्राप्त दिव्य झरने की शीतल फुहारों के लिए तरसते ही रह जाते हैं। यही तरस अनेक नकारात्मकताओं, बाधाओं,

समस्याओं और स्वभावजनित जटिलताओं को पैदा करती है।

प्यारे ब्रह्मा बाबा ने जिस सादगी से जीवन गुजारा वह अवर्णनीय है। छोटे-से सादगी भरे कमरे में तपस्यारत रहते हुए उन आदि पिता ब्रह्मा ने सृष्टि की नव संरचना का सशक्त पौधारोपण कर दिया जो आज उन्नति के शिखर की ओर जा रहा है। तुलना करके देख लें, कहीं आलीशान भवनों और कार्यालयों में बैठकर हम अपने दैवी संस्कारों वाले जीवन रूपी पौधे को सुखा तो नहीं रहे हैं। जितना ध्यान आलीशान चीजों पर है, यदि वह ध्यान संस्कार सींचने में लग जाये तो आदि पिता के पदचिह्नों का कुछ अनुकरण हो पायेगा।

बड़ी देर से हम त्याग की बात कर रहे हैं परन्तु वास्तव में त्याग है क्या? सबसे बड़ा त्याग है देह-अभिमान का। इस एक बीज के त्याग से ही सारे भोगों का त्याग हो जाता है। इस एक भूल को सुधारने से अन्य सभी भूलें सुधर जाती हैं। भ्रुकुटि में विराजमान आत्मा के स्वरूप को भीतर के नेत्र से निहारना, पाँचों युगों में उसके विभिन्न स्वरूपों का सिमरण करना, आत्मा रूपी प्रकाश पुँज को सेकण्ड के संकल्प से परमधाम में परमपिता

के सम्मुख उपस्थित कर देना, देहभान की कीचड़ और काई से सर्वथा अलिप्त रख उसके प्रकाश को प्रकृति और पुरुष के परिवर्तन में रत रखना, यही तो त्याग है। इस देह रूपी गुदड़ी में छिपे आत्मा रूपी हीरे को पहचान, निरन्तर उसे गुणों से तराशना, शरीर रूपी चर्म के थैले

में अदृश्य-से हो गए उस हीरे को दृश्यमान बना देना, यही तो त्याग है। आत्मभान ही सर्व सदगुणों के विकास का मूल आधार है। देहभान सर्व विकारों की जड़ है। इस मूलमंत्र को निरन्तर हृदयंगम किए रखना ही सच्ची त्याग-वृत्ति है।

— ब्रह्माकुमार आत्म प्रकाश

अर्पित श्रद्धा सुमन हमारे

— कवि देवीचन्द कौशिक, दिल्ली

प्रकाश ज्ञान का, मणि-सी दीप्ति, मैं समान सुखदाई।
 तज साकारी, बन आकारी, शिव की गोद समाई।।
 देश-धर्म और जाति-रंग का बंधन तुमने तोड़ा।
 हर मानव को मानवता और परमपिता से जोड़ा।।
 मम्मा-बाबा का संगम थी, मधु और बन का संगम थी।
 संगमयुग है सबसे उत्तम, उस संगम में तुम अनुपम थी।।
 मधुर भासना, मोहक भाषण, निज लक्षण से लक्ष्य मिलाये।
 तुम बाबा में, बाबा तुममें, दोनों खुद में एक दिखाये।।
 सबकी चाहत बनकर सबको राहत देने वाली।
 सबकी सुनकर और समाकर खुशी बाँटने वाली।।
 चन्दन, वन्दन, कथा, आरती जिसकी महिमा गाते।
 उस शिव से तुम नित करती थी अन्तर्मन की बातें।।
 योग-ज्ञान का दिव्यवरण थी, पावनता का उदाहरण थी।
 जीवन के दर्शन से लगता, तुम सृष्टि का प्रथम चरण थी।।
 ज्ञान-योग-धारणा की तुम बनी त्रिवेणी पावन धारा।
 ब्रह्मा-वत्सों की पथ दर्शक, तुम चेतन आदर्श हमारा।।
 फूल उठाये, हाथ हिलाकर सबका स्वागत करती।
 सबकी कुशलक्षेम से अपने को आनन्दित करती।।
 हर्षित मुखड़ा, नयन रूहानी, वचन केसर की क्यारी।
 समता, ममता की तुम मूरत, कहों हो दादी प्यारी।।
 माता-पिता-बंधु-साथी बन सदा रही तुम साथ हमारे।
 हे श्रद्धा की देवी! तुमको अर्पित श्रद्धा सुमन हमारे।।